महिला कथा लेखन में स्त्री चेतना की नयी अवधारणा

डॉ. मार्तण्ड सिंह,

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद
संघटक— पी.जी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

स्त्री सृष्टि की आधारशिला है। यदि किसी भी देश यासमाज की वास्तविक स्थिति जाननी हो, तो उसमें स्त्री की स्थिति के बारे में विचार करना प्रासंगिक होगा। हमारे समस्त पारम्परिक मिथक स्त्री की पराधीनता के पाषणी आलेख हैं। जब वर्तमान युग में स्त्री ने यह महसूस किया कि अस्तित्व, अधिकार एवं आजादी संकट में है तब उसने इन समस्त रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करते हुए अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की! पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्रियों को अपने मानदंडों पर निर्मित परम्परागत पटरी पर दौड़ायाएवं उनकी पराधीनता को ही उनके सम्मान के रूप में परिभाषित किया। किन्तु आधुनिक समाज में वह शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् तंत्रात्मक समाज उसे अपनी व्यवस्था के किस रूप में प्रतिष्ठित करता है यह वह भली-भाँति समझ गई है। आज की शिक्षित स्त्री जागरूक हो गयी है और समय तथा समाज के परिदृश्य में अपने सम एवं विषम सम्बन्धों को समझने हेतु पूरी तरह से तत्पर है।

आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में आयी जागरूकता से स्त्रियों की स्थिति में विशेष परिवर्तन आया है। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारम्भ हुये सुधारवादी आन्दोलनों ने भारतीय समाज की संरचना को गहरे स्तर तक प्रभावित किया है। समाज के विभिन्न वर्गों में व्याप्त जड़ता को खण्डित करने की प्रक्रिया कमोबेश यहीं से प्रारम्भ होती है। इसी नयी चेतना के परिणामस्वरूप समाज में स्त्रियों को आगे बढ़ने पर जो प्रतिबन्ध लगाये हुए थे वे एक-एक कर समाप्त होने लगे। इस नवीन चेतना के फलस्वरूप जहाँ कुद महिलाओं ने शिक्षण संस्थाओं की दहलीज पार की तो कुछ ने सामाजिक वर्जनाओं को चुनौती दी। महिलाओं एवं बालिकाओं को शिक्षा पर विशेष जोर देने के कारण आज शासन प्रशासन, आर्थिक उत्पादन आदि क्षेत्रों में महिलाओं ने अपनी स्थिति मजबूत की है। महिलाओं में हुए सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक जागरण का विस्तृत विवेचन यहाँ दृष्टव्य है।

आर्थिक क्षेत्र में स्त्री की आत्मनिर्भरता एवं जागरण-स्त्रियों की दशा सुधारने और उन्हें अधिकार प्रदान करने के लिये जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है वह आर्थिक स्वायत्तता है। सामाजिक सुधार का भी आधार आर्थिक सुधार एवं जागरण है। आर्थिक स्वाधीनता का आधार शिक्षा के माध्यम से तैयार होता है। सिमोन ने सबसे पहले इस तथ्य को पहचाना और आर्थिक स्वायत्ता पर बल दिया। उन्होंने माना है कि- 'आर्थिक स्वायत्ता के अभाव में स्त्री की स्वाधीनता सर्फ अमूर्त एवं सैद्धान्तिक बनकर रह जाती है।' स्वाधीन भारत में स्त्रियों को आर्थिक रूप से स्वायत्त बनाने के लिए विशेष प्रयास किए गए। सातवें, आठवें दशक में सरकार ने गरीबी उन्मूलन एवं स्वरोजगार के लिये जिते भी कार्यक्रम संचालित किये उसमें महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान किये गये। जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत कम से कम ३० प्रतिशत रोजगार महिलाओं को प्रदान करना अनिवार्य किया गया। समेकित ग्राम विकास कार्यक्रम में यह रेखांकित किया गया कि कम से कम ४० प्रतिशत महिलाएँ लाभान्वित होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यवसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से स्त्रियों को प्रशिक्षित करके आर्थिक रूप से स्वावलम्बी किया गया है।

पुरुष सत्तामक समाज में स्त्रियों को आर्थिक दृष्टि से गुलाम बनाने हेतु प्रयत्न किया गया। कृषि पद्धति को जिस खोज से मानव ने द्रुत विकास को प्राप्त किया और जिस पद्धति की खोज का श्रेय मुख्यतरू स्त्री समाज को है उससे स्त्री को कृषि और उससे उत्पादित आय से दूर रखा गया। सामन्ती व्यवस्था में स्त्रियाँ, विशेषकर उच्च वर्णों की स्त्रियाँ दिन प्रतिदिन घर की चहारदीवारी में वैâद होती गयीं। निम्न वर्ण की प जनजाति की स्त्रियों को यद्यपि श्रम और उत्पादन से जोड़ रखा गया किन्तु उनकी स्थिति एक मजदूर की ही रही। अत्यधिक परिश्रम के पश्चात् भी उन्हें न तो तन ढकने के लिये ठीक से कपड़ा मिला और न ही पेट भरने के लिये भोजन अतस्र उनकी स्वतंत्रता भी निरर्थक है। कहा जाता है-

''प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के बाद इतनी संख्या में पुरुष मारे गये कि मजबूरी में यूरोप की स्त्रियाँ पर अनेक जिम्मेदारियाँ सौंपनी पड़ीं। उन्हें घर से बाहर निकलना पड़ा।''

स्पष्ट है कि यूरोपीय स्त्रियों को भी अधिकार उनके प्रति उदारभाव के कारण नहीं अपितु परिस्थितियों के दबाव के कारण प्रदान किया गया।

भारतीय समाज में स्त्रियों को अर्थोपार्जन हेतु १९१०'१५ के आसपास घर से बाहर भेजा गया जो पुनर्जागरण काल में हुये सुधारों की परिणति थी। इस सुधार की भी एक निश्चित सीमा निर्धारित थी। समाज में विधवा एवं परित्यक्ता को ही इस प्रकार की स्वतंत्रता प्रदान की गई, अविवाहित युवतियों विवाहित गृहणियों को इस प्रकार के अधिकर प्राप्त नहीं थे। स्वयं उच्च कुल की स्त्रियाँ भी इस आर्थिक निर्भरता के प्रति विशेष इच्छुक नहीं थी। ''व्यक्ति और समूह स्वतंत्रता के सभी दरवाजे आर्थिक स्वतंत्रता से खुलते हैं'' सन् १९३५ के बाद स्त्रियों की इस सोच पर बल दिया कि उन्हें भी समाज में सम्मान और पहचान तभी मिल सकताr है जब वो आर्थिक रूप से स्वायत्त हों। इसके अलावा धीरे-धीरे अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों से पुराने मूल्यों के स्थान पर नये मूल्यों को स्थान मिला जो स्त्रियों के आर्थिक भागीदारी का पक्षधर था। महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वायत्त होने और अपनी पहचान बनाने में उनके प्रयास के साथ ही अनेक परिस्थितियाँ एवं कारण उत्तरदायी थे। इसमें प्रमुख कारण निम्नलिखित है-

1. शिक्षा का प्रचार एवं नवीन आर्थिक चुनौतियों ने महिलाओं का आर्थिक रूप से स्वायत्त होने के लिये प्रेरित किया।
2. सभी आर्थिक आधार टूट जाने पर नौकरी की ओर प्रवृत्त होना।
    a. पति मृत्यु के कारण कामकाजी बनना।
    b. माँ या पिता की बीमारी के कारण कामकाजी बनना।
    c. पारिवारिक जिम्मेदारियों की पूर्ति हेतु नौकरी करना।
3. बदलती अर्थव्यवस्था में दहेज'
    a. दहेज की राशि इकट्ठा करने के लिये नौकरी करना।
4. सामाजिक व्यवस्था में हुये परिवर्तन, बाल विवाह की समाप्ति एवं देरी से हो रहे के कारण नौकरी के लिये पर्याप्त अवसर प्राप्त होना।
5. उच्च शिक्षा एवं भारतीय संविधान द्वारा प्राप्त अधिकारों ने स्त्री को आर्थिक रूप से स्वायत्त होने में मदद की।

महिला कथा लेखन में आयी आर्थिक स्वायत्ता प्राप्त प्रमुख महिला चरित्र:

सकुन (आका बंटी उपन्यास)- सकुन मन्नू भंडारी जी के उपन्यास आपका बंटी की नायिका है जो आर्थिक रूप से स्वायत्त है। सकुन कालेज में प्रिंसिपल है। सकुन पति से सम्बन्ध विच्छेद हो जाने के पश्चात् भी आर्थिक स्वायत्त होने के कारण टूटती नहीं है अपितु अपना जीवन सुखपूर्वक बिताती है। सकुन अपने पुत्र बंटी की भी देखभाल करती है और उसे

सभी सुविधायें उपलब्ध कराती है। आर्थिक रूप से स्वायत्ता स्त्रियाँ हमें स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों में प्राप्त होने लगती हैं। यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच' की नायिका कंचन स्वायत्त की बात करते हुये कहती है-

''जो लड़कियाँ जीविका कमाने का साहस कर रही हैं वे अपना भाग्य दूसरों के हाथों में क्यों दे दें? आज तो दिल्ली में सभी जगह लड़कियां काम कररहती हुई दिखाई दे रही हैं।...विभाजन से पहले मैं नौकरी कर लेने की कल्पना करती थी तो विशेष साहब की आवश्यकता जान पड़ती थी पर अब यह साधारण सी बात है।''

इस प्रकार स्वाधीनता के पश्चात् लेखन जगत में आर्थिक स्वायत्ता की माँग हो रही है।

प्रिया (पीली आंधी): प्रभा खेतान- प्रभा खेतान जी अपने कथा साहित्य के माध्यम से स्त्री के आर्थिक स्वायत्तता पर बल देती हैं। प्रभा खेतान जी के उपन्यासों 'छिनमस्ता' एवं पीली आंधी को औरतें सम्पत्ति एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता के माध्यम से अपनी अलग पहचान बना रही हैं। 'छिन्नमस्ता' कि 'प्रिया' अपने जीवन का चुनाव ढंग से करती है। प्रिया स्वयं आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बनती है। 'पीली आंधी' उपन्यास की नायिका सोमा का विवाह एक अति सम्पन्न परिवार में होता है। उसका पति अकर्मण्य है और स्वयं कोई कार्य न करके अपनी पैतृक सम्पतित पर जीवन यापन करता है। सोमा ऐसे अकर्मण्य पति का परित्याग कर अपने जीवन साथी के रूप में सुमित नामक ऐसे व्यक्ति का चयन करती है जो स्वयं आत्मनिर्भर है और उसकी भावनाओं एवं विचारों का सम्मान करता है। सोमा अकर्मण्य पति से कहती है-''हाँ गौतम मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हूँ। शायद इस घर के बाहर तुमको एक हजार की नौकरी नहीं मिले, लेकिन मुझे मिल जायेगी।''

अनारो (मंजुल भगत)- मंजुल भगत जी के उपन्यास अनारों की नायिका 'अनारो' पति के परित्याग के पश्चात् भी नहीं टूटती जिसका कारण उसका आर्थिक स्वायत्त होना है। अनारो स्वयं मेहनत करके आर्थिक स्त्रोत अर्जित कर लेती है और स्वयं का तथा अपने परिवार का पालन पोषण करती है। वह गुलामी की रोटी की तुलना में मजदूरी की रोटी के महत्व को स्वीकार करती है।

इस प्रकार विभिन्न महिला कथा लेखिकाओं ने ऐसे कई महिला चरित्र प्रस्तुत किये हैं जो आर्थिक रूप से स्वायत्त हैं। इनकी यह आर्थिक स्वायत्ता का आधार शिक्षा की नींव पर खड़ा होता है। इस समाज में जितनी भी आर्थिक रूप से स्वायत्त महिलाओं को देखते हैं उनमें से अधिकतर शिक्षित हैं। सिमोन ने इसे सबसे पहले पहचान कर आर्थिक स्वायत्तता की आत की जिसे हमारी कथा लेखिकाओं ने विस्तृत फलक पर उतारा है। अगर हमें भारतीय समाज की स्त्रियों को आर्थिक रूप से स्वायत्त एवं अपनी शक्ति पर संघर्ष करते हुये देखना है तो हमें सबसे पहले उन्हें शिक्षा का अधिकार प्रदान करना होगा। आर्थिक रूप से स्वायत्त स्त्रियों को उपभोक्तावादी संस्कृति से बचते हुये भारतीय समाज के विकास के लिये आना होगा।

महिलाओं में सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में जागरण:

महिलाओं में आर्थिक रूप से जागरण के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरण का भी सूत्रपात हुआ। महिलाओं ने प्राचीन जगत् की सामाजिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं का जो उनके विकास में बाधक थी परित्याग कर नयी अवधारण का विकास किया। आज की वर्तमान युगीन स्त्रियाँ नवीन शिक्षा ग्रहण कर सुशिक्षित, प्रबुद्ध एवं प्राय: आत्मनिर्भर हैं। अत: वह उन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों रीति रिवाजों और परम्पराओं को ग्रहण करती हैं जो समाज के विकास में सहायक है । जो परम्परायें एवं नियम स्त्री के पैरों की बेड़ियां बनने का प्रयास करते हैं जो उन्हें पति के साथ जल जाने को मजबूर बताते हैं उनको आज की स्वाधीन स्त्रियाँ तोड़ रही हैं।

अनेक महिला तथा लेखिकाएँ ऐसी हैं जो सामाजिक मूल्यों एवं परम्पराओं को महत्व को स्वीकार करती हैं। उसका माना है कि ''समाज'' व्यक्ति से श्रेष्ठ है, विराट है और व्यक्ति के हित के लिए

है। इसलिए हम ''सामाजिक-मूल्यों'' एवं मान्यताओं को नकार नहीं सकते। हम जानते हैं कि जो कार्य हम सामाजिक-मान्यताओं को नकार नहीं सकते। हम जाते हैं कि जो कार्य हम सामाजिक-मान्यताओं के विपरीत करने का दुस्साहस करेंगे, समाज उसे क्षमा नहीं कर सकता। बुरा मानेगा। हमारा सम्मान नहीं करेगा, हम समाज में हंसी के पात्र बन जायेंगे। इसश्लिए हमें अपनी वैयक्तिक इच्छाओं और मनोभावों को भी कभी-कभी दबाना पड़ता है।

'समाज' व्यक्ति को अपनी लक्ष्मण-रेखाओं में 'वैâद कर रखना चाहता है और व्यक्ति आज वैज्ञानिक-बौद्धिक युग में इन सीमाओं में नहीं रहना चाहता। वह अपनी 'प्रेम-विषयक' कोमल भावनाओं, व्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रबलेच्छा के कारण गलित-जर्जरित सामाजिक परम्पराओं को तोड़ने के लिए विवश हो जाता है। इसी कारण ''व्यक्ति' तथा ''समाज'' में वैचारिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो रही है दोनों में 'टकराहट' और 'क्लेश' उत्पन्न हो जाता है।

हमारी सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि हम जैसा सिद्धान्त में तथाकथित आदर्श की बात करते हैं, वैसा यथार्थ में लगता नहीं। हमारी ऊपरी परत बिल्कुल भिन्न है। अन्दर से कुछ और तथा बाहरी दिखावे के लिए कुछ और है। चिरकाल से ही व्यक्ति विविध मुखोटे लगा कर जी रहा है। इसी विसंगति के कारण ''वयक्ति' तथा 'समाज' दोनों की मूल्यगत दृष्टियों में 'बदलाव एवं टकराहट' की स्थिति उत्पन्न हो गयी है।

जहाँ तक 'साठोत्तरी कथा-साहित्य' में मूल्य दृष्टि का प्रश्न है वहाँ 'सामाजिक-मूल्यों' एवं 'वैयक्तिक-मूल्यों' दोनों की अपने-अपने स्थान पर 'प्रासंगिकता' मान्य है। न तो सामाजिक-कृत्यों की उपेक्षा की जा सकती है और न ही 'वैयक्तिक-मूल्यों की सार्थकता को ही नकारा जा सकता है। कहावत सत्य सि० हो रही है कि 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' कुछ कथाकार 'सामाजिक-मूल्यों को वरीयता देकर 'वैयक्तिक-मूल्यों' पर कठोर अंकुश लगा रहे हैं और कुछ वैयक्तिक मूल्यों को प्राथमिकता देने की जोरदार वकालत कर रहे हैं।

सामाजिक-मूल्यों की प्रासंगिकता एवं महत्ता दिखाते हुए शशि प्रभा शास्त्री लिखित ''नावें'' उपन्यास में अविवाहित मालती के गर्भवती हो जाने पर उसकी माँ उसे तत्काल उसी अवस्था में घर से निकाल देती है, क्योंकि उसे समाज का 'भय' है। उसे समाज की परम्पराओं से जुड़े रहना है, उससे कट कर नहीं रहना है। सामाजिक सीमा-रेखाओं को नहीं तोड़ना है। वह कहती है-

''अरी कमबख्त, हरामजादी, कुत्ती, तुझे यही करके जाना था, तो तू इस घर की दहलीज पर चढ़ी ही क्यों? कहीं डूबकर क्यों नहीं मर गई? हमें क्या पता, हम किसी की हराम की कमाई खा रहे हैं। गरीब हम जरूर हैं, पर इतने जलील अभी नहीं हुए हैं, हमें अस तरह का रुपया नहीं चाहिए। निकल जा, काला मुँह कर, इससे पहले कि छोटे बच्चे उठें, पास पड़ोस झांके, करमफटी इससे पहले दफा हो जा और जाकर डूब मर। खबरदार, फिर कभी इस घर की दहलीज़ चढ़ी तो।''

सामाजिक मूल्यों की रक्षा के लिए माँ, अपनी पुत्री के प्रति अपने वात्सल्य तथा सौहार्द्र को तिलांजति दे देती है। क्योंकि उसे समाज का बहुत बड़ा भय है। सामाजिक-मूल्यों को ठुकरा कर वह समाज में नहीं रह सकती है।

सामाजिक मूल्य-मर्यादाओं के कारण व्यक्ति को 'प्रेम' जैसी कोमल भावनाओं-के व्यक्त करने की छूट नहीं है, अन्यथा समाज का नैतिक पतन निश्चित है। सामाजिक मूल्यों एवं नियमों का हनन करने वाला, इनके विरुद्ध जाने वाला व्यक्ति 'अपराधी' और 'पापी' है। ऐसा विचार निरूपमा सेवती ने अपने उपन्यास 'दहकन के पार' में अच्छी तरह व्यक्त किया है-

''मैंने कहा था-तू ऐसा सोच भी सकती है? मुसलमान आदमी से शादी?...क्या कहती है? तुझे मालूम है न, तेरे पिता कितने सख्त हैं, इन मामलों में।...फिर रिश्तेदारियों को भी बड़ी लिहाजदारी हैं, जो बड़े खानदानों में पीढ़ी दर पीढ़ी चले आये आभूषणों की तरह ही चलती रहती है। इसलिए घर के लोग भले

ही आर्थिक रूप से, मानसिक रूप से, स्वतंत्र तुझ जैसी स्त्री को रोक न पाये, लेकिन खुशी से तुझे अपने पारिवारिक आंचल में समेट भी न पायेंगे।''

इस प्रकार 'समाज' के भय से परिवार के-सदस्य, स्वजनों को त्याग करने में तनिक भी हिचकते नहीं हैं। समाज क्या कहेगा, अथवा वे समाज में वैâसे रह पायेंगे। यह 'भय' माता-पिता को पुत्र-पुत्री के प्रति निर्मम बनाता है। अन्ततरू समाज को प्राथमिकता देकर अपनी सन्तानों तक का त्याग करने को बाध्य हो जाते है।।

समाज कौटुम्बिक कुलीनता, चारित्रिक पवित्रता एवं वैवाहिक औचित्य आदि पर अपनी दृष्टि रखता है। यदि कोई भी सामाजिक-मूल्यों को नकारता है, तो समाज उसका 'बहिष्कार' एवं 'निष्कासन' करने को कटिबद्ध हो जाता है आलोच्य परिप्रेक्ष्य में शिवानी ने अपने चर्चित उपन्यास 'कृष्णकली' में लिखा है--

''ठीक ही कह रही थी लिंडा, ने उसके पिता का पता था, न माँ के कुल गोत्र का, क्या कोई भी निष्ठावान् हिन्दू परिवार उसे कीाी बहू बनाने को तैयार होगा।''

मनुष्य के लिए 'समाज' अपरिहार्य है। उसे समाज की जरूरत अवश्यमेव पड़ती है, क्योंकि उससे अलग हमारा अस्तित्व नगण्य है। अतएव समाज के विराट के सामने व्यक्ति को अपने मनोभावों तथा आवेशों को दबानापड़ता है। शिवानी जी इस संदर्ीा में आगे लिखती हैं-

''अच्छा, कली का कलेजा डूब गया। तो वह उसे यहाँ से खदेड़ना है, किन्तु चित्त का क्षोभ उसके चेहरे पर नहीं उतरने दिया।

''तुम्हारे बड़े दा को मेरी चिन्ता नहीं करनी होगी, माया, वह हँसकर कहने लगी, मैं खुद ही कलकत्ते से बाहर चली जा रही हूँ।''

उपर्युक्त विवेचनों से स्पट हो जाता है कि समाज व्यक्ति को बन्दी या वैâद रखना चाहता है और यदि अपनी स्वतंत्र इच्छाओं के कारण उसकी चहार दीवारी को लांघ कर बाहर पैर रखना चाहता है। व्यक्ति की भी अपनी 'अस्मिता' है, उसका अपना 'स्व' है। इसी बिन्दु पर न चाहते हुए भी दोनों एक दूसरे से टकराते हैं, संघर्ष की स्थिति आ जाती है।

हमारी सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि हम धर्म, जाति, नीति-नियमों, आदर्शों की बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं। कठोर नियम बनाते हैं किन्तु व्यावहारिक धरातल पर प्रयोग करने में अक्षम रहते हैं। आदर्श कुछ है और यथार्थ कुछ और है। बाहर कुछ है और भीतर कुछ और है। ऐसी 'मुखैटेबाजी' भला कब तक चलेगी। इस संदर्ीा में 'एक इंच मुस्कान' नामक उपन्यास में राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी के विचार अमिता तथा अमन के माध्यम से व्यक्त किया गया, ध्यातव्य है-

''एक आदमी भी तुम बता सकते हो, जो अपने असली रूप में सबके सामने आने का साहस रखता हो। तुम जैसे बाहर दिखाईदेते हो, क्या भीतर से भी वैसे ही हो। ऐसा नहीं, अगर आदमी चाहे एक बारसाहस कर ले, पर आस-पास वाले उसके उस रूप को कभी बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे।''९

तात्पर्य यह है कि नये मुखौटे लगा कर मनुष्य सफेद पोश समाज में विहार करता है। प्रवंचना, ढोंगे, आडम्बर और छल-छद्म का प्रश्रय लेता है।

समकालीन महिला लेखिकाएँ अपने कथा साहित्य में नवीन चेतना से युक्त नारियों को स्थान दे रही हैं जो समाज और संस्कृति के प्रति एक नवीन दृष्टिकोणी रखती हैं। भारतीय संविधान में भी इसको अपने गौरव तथा अस्तित्व की रक्षा के लिए अनेक उपबंध जैसे अनुच्छेद १४, १५(३), १६(१)(२), १९(१), (६)३९ (क) (३), ४२, ४४, ४१ (क) आदि के माध्यम से अधिकार प्रदान किये गये हैं। स्वतंत्र भारतीय समाज को यह पता है कि जब तक महिलाओं का विकास हमारी विकासमूलक रणनीति का अभिन्न अंग नहीं बन जाता, तब तक हमारा राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता। भारतीय समाज में महिलाओं के शिक्षा के महत्व को मान्यता प्रदान की गई तथासती और भ्रूण हत्या, शिशु हत्या जैसी सामाजिक बुराईयों को दूर करने हेतु ठोस प्रयास किये गये। भारतीय संसद एवं संविधान ने

महिलाओं को सामाजिक अधिकार प्रदान करने हेतु अनेक सराहनीय नियम पारित किये। इसमें प्रसूति सुविधा अधिनियम, दहेज निषेध अधिनियम, अनैतिक व्यापार अधिनियम, स्त्री अशिट रूपण अधिनियम शामिल हैं।

कृष्णा सोबती जी ने अपने कथा नायिकाओं के माध्यम से प्राचीन जड़ सामाजिक परम्पराओं एवं सांस्कृतिक रूढ़ियों से संघर्ष करती है एवं नवीन संस्कृति की प्रतिठा करती हैं। इन्होंने अपने कथा साहित्य में भारतीय मूल्य एवं मर्यादाओं को वर्तमान युगीन नारी की स्वतंत्रता में बाधक मानते हुए उसको नकार दिया है। उनके उपन्यास मित्रो मरजानी की नायिका मित्रों भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं को मुँह चिढ़ाती हैं। अपने भावों को भीतर ही दबाकर कुंठा की शिकार होने के बजाय उसं व्यक्त करना श्रेयस्कर समझती हैं-मित्रों झिझकी हिचकिचाई नहीं। .....देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता।.....बहुत हुआ हप्ते पखवारे और मेरी इस देह में, इतनी प्यास है कि मैं मछली सी तड़पती हूँ।''

कृष्णा जी ने 'सूरजमुखी अंधेरे' उपन्यास में 'रति' नामक ऐसी पात्र को प्रस्तुत किया है जो समाज परम्परागत नियमों को तोड़ती हैं। कृष्णा जी की यह पात्र एक नयी दिशा की ओर जाती है। प्रख्यात समीक्षक डॉ. राजेन्द्र यादव जी के शब्दों में 'द्वार से बिछुड़ी' में आदमी ने औरत को चीज की तरह इस्तेमाल किया था, यहाँ औरत आदमी को एक दूसरी दृष्टि से इस्तेमाल करती है।'' अब तक केवल पुरुष ही स्त्रियों का इस्तेमाल कर उसका परित्याग करते रहे हैं किन्तु रती स्त्री है है जो पुरुष का उपभोग करके उसका परित्याग करती है। इस उपन्यास में लेख्किा कृष्णा सोबती ने स्त्री-पुरुष के बेबाक मिलन को और सम्भोग की विभिन्न स्थितियों को पूजा जैसी गरिमा प्रदान की है। अन्त में प्रेम के इस अनुभव से अभीभूत दिवाकर अपनी पत्नी को छोड़कर रती के पास आना चाहता है लेकिन वह इन्कार कर देती है। अब सभी विकारों से मुक्त है और दिवाकर अब उसके लिये अप्रासंगिक है।''

मैत्रेयी पुष्पा जी अपने कथा साहित्य के माध्यम से समाज एवं संस्कृति के प्रति एक नया दृष्टिकोण देती हैं। सामाजिक मर्यादा के नाम पर समाज ने स्त्रियों पर जो प्रतिबन्ध लगाये थे उसको भंग करती हैं। मैत्रेयी जी ने देह की पवित्रता के नाम पर मन की पवित्रता के महत्व को स्वीकार किया है और देह शुचिता के परम्परागत मापदण्डों को तोड़ा है। मैत्रेयी जी के कथा साहित्य में अनेक ऐसे प्रसंग आये हैं जहाँ देह शुचिता के परम्परागत नियमों का उल्लंघन हुआ है। मैत्रेयी जी के चाक उपन्यास में कई ऐसे प्रसंग विद्यमान है यथा श्रीधर मास्टर और सारंग का सम्बन्ध, कलावती चाची और पहलवान वैâलाशी सिंह का प्रसंग तथा गुरूकुल में शास्त्री जी का प्रसंग हो, हर जगह परम्परागत पुरुषवादी समाज के नियमों का उल्लंघन करती प्रतीत होता है। सारंग परम्परागत नियमों को तोड़कर श्रीधर से सम्बन्ध करती है-''मगर जैसे ही श्रीधर के बाहों की जकड़न देह पर कसने लगी'च च च करके मछली सी छटपटाने लगी। गिरफ् ढीली कर दी श्रीधर ने।''

यह प्रसंग यद्यपि भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है मगर आज की जागरूक नारी इसे तोड़ती है। चाक उपन्यास में सारंग 'करवा चौथ' का व्रत रखती है। यह महिलाओं का व्रत है जो वह अपने पति की लम्बी उम्र के लिये रखती है। इसमें उपवास कर चन्द्रमा को अर्ध्य दिया जाता है। गाँव की अन्य स्त्रियों की भाँति करवा चौथ का व्रत तो रखती हैं मगर वह अर्ध्य में अपने पति का स्मरण करने के बजाय दीपक की लौ में श्रीधर को देखती हैं-

यह! दीपक से उठती सुनहली लौ!

लौ में जगमगाते-श्रीधर!श्रीधर!

इसी प्रकार चाक उपन्यास में कई प्रकार के मिथक एवं मान्यताएँ तोड़ी जाती हैं। वैâलासी सिंह और कलावती चाची के प्रसंग के माध्यम से मैत्रेयी जी इस मिथक को तोड़ती हैं जो कहती हैं कि पुरुष के छूरे से स्त्री भ्रष्ट हो जाती है।

'झूलानट' उपन्यास की नायिका शिलो के माध्यम से मैत्रेयी जी बुन्देलखण्ड की 'बछिया' प्रथा को तोड़ती हैं। शिलो का पति जो उसे छोड़कर चला जाता है तो वह अपने देवर से सम्बन्ध स्थापित करती है और उसके साथ पत्नी की तरह रहती है। शिलो की सास जब सामाजिक मर्यादा के भय से उसे विवाह या बछिया करने को कहती है तो वह समाज की परवाह न करते हुये इन्कार कर देती है। इसी प्रकार मैत्रेयी जी के एक अन्या उपन्यास 'इदन्नमम' की नायिका मन्दाकिनी वैâलाश मास्टर द्वारा बलात्कार किये जाने के पश्चात् अपनी देह को अपवित्र नहीं मानती और उसे मन की पवित्रता से जोड़ कर देखती है-''हमारा मन जो कहता है और हमारे पैर हमें जहाँ ले जाते हैं। वह हमारा कुविचार नहीं जन्मसि० अधिकार है।''

इसी प्रकार महिला कथा लेखन में लेखिकाओं ने अनेक ऐसे पात्रों को प्रस्तुत किया है जो परम्परागत सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को नकार नवीन मूल्यों को जन्म देती है। नमिता सिंह की कहानी 'टूट जाने के बाद' और दीप्ति खण्डेलवाल की 'देह की सीता' नये सामाजिक मूल्यों का प्रश्रय देती है। इसी प्रकार स्त्री चेतना एवं जागरूकता को वाणी देने वाली अन्य लेखिकाओं ने अपने कथा साहित्य में यथा मन्नू भंडारी (आपका बंटी), अमृता प्रीतम (रसीदी टिकट) ममता कालिया (बेघर), मृदुला गर्ग (कठबुलाब) उसके हिस्से की धूप, प्रभा खेतान (छिन्न मस्ता) मेहरून्निशा परवेज (अकेला पल्लाश) मृणाल पाण्डेय (लड़कियाँ) नाशिरा शर्मा (शाल्मली) आदि के माध्यम से एक नवीन संस्कृति को प्रश्रय देती है। आज की लेख्कि उन सभी सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को तोड़कर अपने नये मूल्य स्थापित करने को प्रतिबद्ध हैं जो स्त्रियों के पैरों की बेड़ियाँ बनना चाहते हैं।

संदर्भ-सूची

1. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय स्त्री: चन्द्रकाल हारे, पृ.१
2. वही, पृ.२
3. झूठा सच: द्वितीय भाग, पृ. ६०१
4. पीली ऑधी
5. नावें, शशिप्रभा शास्त्री, राजकमल प्रकाशन, पृ. २१
6. दहकन के पार, निरूपमा सेवती, पृ. ६
7. वही, पृ. १४५
8. एक इंच मुस्कान, पृ. २५५
9. मित्रो मरजानी, राजकमल पेपरबैक्स, पृ. २७
10. आदमी की निगाह में औरत, पृ. १३१
11. चाक, राजकमल प्रकाशन, पृ.३२९
12. वही, पृ० १८९
13. इदन्नमम् , राजकमल प्रकाशन, पृ. ८४
14. हिन्दी अनुशीलन, जून-२००४, पृ. ७

Copyright © 2017, Dr. Martand Singh. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.